

सांस्कृतिक सेतु

की भूमिका

चालीन पोर्टर द्वारा साक्षात्कार

वाशिंगटन, डी.सी. में अमेरिकन यूनिवर्सिटी से ग्रेजुएट भारतीय छात्रा गायत्री मूर्ति से चर्चा।

नए विश्वविद्यालयी सत्र के लिए लगभग 600,000 अन्तर्राष्ट्रीय छात्र अमेरिकी परिसरों में औजूद हैं। उधर करीब 200,000

अमेरिकी छात्र अपना देश और सांस्कृतिक परिवेश छोड़कर, किसी दूसरी संस्कृति के बीच शिक्षा पाने निकले हैं। उन लाखों जिंदगियों के कोई भी दो अनुभव एक से नहीं होंगे। लेकिन जब अन्तर्राष्ट्रीय छात्र अपने अनुभव साझे करने लगते हैं तो एक नए देश में, एक अनजाने कैम्पस में, अपनी जगह तय करने की यात्रा से जुड़े साझे सूत्र उभरने लगते हैं।

हाल ही में इंटरनेशनल कम्युनिकेशंस में मास्टर ऑफ आर्ट्स की डिग्री पा चुकी गायत्री मूर्ति अपने अनुभव स्पैन के पाठकों को बता रही हैं।

आपके अनुभव के बारे में सबसे रोचक क्या था?

अगस्त 2007 में मैं जब यहां आई तो यह मेरी पहली अमेरिका यात्रा थी। अमेरिका को लेकर मेरी जो भी सोच, जो भी कल्पना थी, वह लोकप्रिय सिनेमा और साहित्य पर और मेरे पापा जो बताते थे, उस पर आधारित थी। मेरे लिए अमेरिका का मतलब साइमन और गारफँकल का संगीत और मॉल (वाशिंगटन में प्रदर्शनों की लोकप्रिय जगह) पर जुलूस निकालते लोग थे। मेरे पापा मुझे यही बताते थे, लेकिन पहले सेमेस्टर के मेरे अनुभव इस आदर्श अमेरिका से एकदम ही मेल नहीं खाते थे। फिर 2008 के वसन्त के सेमेस्टर में (तक्तालीन) सीनेटर बराक ओबामा अमेरिकन यूनिवर्सिटी में एक सभा को सम्बोधित करने आए, इसी सभा में (सीनेटर टेड केनेडी ने उनका समर्थन किया, यह यहीं, इसी कैम्पस पर हुआ। मेरे मित्र कह रहे थे, “हमें जाना ही चाहिए।” मुझे सुबह पांच बजे जाना और

राष्ट्रपति पद के लिए डेमोक्रेटिक पार्टी के

उम्मीदवार के दावेदार के बतार जनवरी 2008 में अमेरिकी विश्वविद्यालय के परिसर में एक रैली में राष्ट्रपति बराक ओबामा।



फोटो: गणेश मार्टि

सभा में शामिल होने के लिए लाइन में लगना याद है।

और इसके बाद पूरे 2008 में मुझे वह आदर्शवाद दिखता ही रहा। लोग जिस भी राजनीतिक विचारधारा से जुड़े हों, वे अपने सरोकारों के बारे में बात कर रहे थे। मैं वह अमेरिका देख पा रही थी जिसकी कल्पना खासतौर पर मेरे माता-पिता की पीढ़ी करती है। वह जब अमेरिका की कल्पना करते हैं तो वियतनाम युद्ध विरोधी प्रदर्शनों की, बीट पीढ़ी की कविता की कल्पना करते हैं – और मैं यह सब देख पा रही थी। फर्क बस यह है कि अब यह ज्यादा जीवन्त था।

भाषण सुनने के लिए पांच बजे सुबह जागने के बारे में बताइए- क्या आपके मित्रों ने आपको बिस्तर से घसीट कर जगाया?

अरे नहीं। यह तो मुझे सुनना ही था। मैं अन्तर्राष्ट्रीय सम्प्रेषण की छात्रा हूं तो मैं तो एक ऐसे व्यक्ति से बहुत प्रभावित होती ही जो बढ़िया ढंग से बोलता है और कई तरह के लोगों की बात समझता है, उन्हें अपनी बात समझा पाता है। 4 नवम्बर (अमेरिका में मतदान का दिन) को मैं उत्तेजित थी। 20 जनवरी (शपथ ग्रहण दिवस) को मैं उत्तेजित थी। तब तक मैं सोचने लगी थी, “मुझे जाना ही चाहिए। इस पल को गंवा देना बेवकूफी होगी।”

आपने भारत और अमेरिका में शिक्षा की पद्धति में क्या अंतर देखा?

वैसे तो यह आप जिस विषय की पढ़ाई कर रहे हैं उस पर निर्भर करता है लेकिन भारत में काफी हद तक कक्षाएं अध्यापक ही संचालित करते हैं। उन्होंने तय कर लिया होता है कि वह कक्षा में क्या पढ़ाने

गायत्री मूर्ति (बाएं) अमेरिकी विश्वविद्यालय की अपनी मित्रों शांति शोजी और मारिया फियोरियो के साथ (दाएं)।

वाले हैं। मैं एक बहुत बड़े जेसुइट कॉलेज में पढ़ती थी, हर कक्षा में करीब 300 छात्र होते थे। तो कक्षा में चर्चा हो पानी कठिन ही थी, और इस तरह एक तरह की बेदिली का माहौल बनता है। और ब्रिटिश पद्धति की तरह हमारे यहां भी पूरा जोर साल के आखिर में होने वाली परीक्षा पर रहता है। आप सालभर कक्षा में बैठें और फिर एकदिन सब पढ़ा-रटा, कागज पर उतार दें। बस हो गया। टर्म पेपर्स या प्रेजेंटेशन्स का कोई काम नहीं। एकमात्र अपवाद हमारी साहित्य की कक्षा थी, उसमें कम छात्र थे और वहां चर्चा होती थी।

जब मैं यहां आई तो पाया कि यहां आपको अपनी राय बताने, असहमत होने को प्रोत्साहित किया जाता है। यह कहने को प्रोत्साहित किया जाता है कि ‘संसार को देखने का मेरा नज़रिया आपसे नहीं मिलता’ ऐसी स्थिति में हम सब सीख पाते हैं। यही अमेरिकन कक्षा की खूबी है।

कक्षा में भाषा को समझ लेना एक बात है, लेकिन अमेरिकी छात्रों को समझने, उनके व्यवहार को समझने में तो आपको मेहनत करनी पड़ी होगी। अपने हमउप्र छात्रों से अनौपचारिक संवाद रखने में आपको दिक्कत महसूस हुई?

मैं अंग्रेजी बोलती-समझती बड़ी हुई- यह मेरी पहली भाषा है। इस मामले में तो मुझे दिक्कत नहीं हुई। मैं मुम्बई से आई थी जो दो करोड़ लोगों का शहर है- तो खुली जगह, अपने स्पेस जैसी बात के बारे में सोच पाना असम्भव सा है। यहां जैसे स्पेस की तो हमें आदत ही नहीं है।

स्पेस अपने आप में बड़ी बात है- इसमें दोस्तों की परिभासा और हमारी हादों की बात भी आ जाती है। शुरू में तो मुझे लगता था, “अरे, मुझे तो घर की याद आ रही है। यहां मैं अपने दोस्तों को रात के दो बजे फोन करके



फोटो: अमेरिकी राष्ट्रपति

बात नहीं कर सकती। मैं उदास हो कर मुम्बई और वाशिंगटन की तुलना करती रहती थी। लेकिन आखिर आप दोनों संस्कृतियों को सही प्ररिप्रेक्ष्य में देखने लगते हैं। आप समाजों को भी बाहरी व्यक्ति और अन्दर वाले की तरह देखना सीख लेते हैं। यहाँ मैं भारतीय प्रवक्ता हूँ। मुम्बई में मैं अमेरिका से लौटी लड़की होती हूँ जो अमेरिकी समाज के बारे में बता सकती है।

तो इसका मतलब क्या यह है कि आप तुलना करने की स्थिति से आगे बढ़ जाते हैं और स्थितियों और सांस्कृतिक प्रचलनों को उनके सही प्ररिप्रेक्ष्य में स्वीकार करने लगते हैं?

जी। वह जीने की अलग-अलग प्रणालियां ही तो हैं, जैसे यातायात के नियम भारत में अलग हैं और अमेरिका में अलग। आप समझने लगते हैं कि वह कैसे विकसित हुईं; उन्हें वे जैसी वे हैं, वैसी समझने लगते हैं। लेकिन इसका एक नुकसान यह है कि आप सभी जगह बाहरी व्यक्ति बन जाते हैं, जैसे आप दो संसारों के बीच की किसी अलग सी जगह पर होते हैं। मैंने अपनी कक्षा में एक शब्द सीखा - सांस्कृतिक बिचौलिया। तो आप शायद वह सांस्कृतिक बिचौलिया बन जाते हैं जो दो संस्कृतियों के बीच संवाद का सेतु

होता है।

आप खुद को सांस्कृतिक संवाद के सेतु की भूमिका में कहाँ देखती हैं?

यह दोहरा जीवन जीना है। कभी-कभी तो आप समझ तक नहीं पाते कि आप हैं कौन? जहाँ तक मेरा सवाल है तो जब मैं यहाँ हूँ तो जाहिर है कि लोगों को लगता है कि मेरा लहजा भारतीय है। और ऐसा है भी। लेकिन मैं मुम्बई लौटूंगी तो मेरे मित्र कहेंगे कि मेरे लहजे पर अमेरिका का असर है। तो यह बहुत अजीब सा अनुभव है। यहाँ मैं एक अंतरराष्ट्रीय छात्रा हूँ। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि मुझे मैं बदलाव न आए। मैं इस भूमिका में सहज अनुभव तो खो नहीं करती, लेकिन मुझे इसमें सहज होना ही होगा।

और एक बात कहूँ? यह ऐसा दुखी करने वाला अनुभव भी नहीं है।

यानी मजेदार ढंग से जिया जा रहा दोहरा जीवन?

बिल्कुल मजेदार ढंग से! मुम्बई में मैं हजारों-लाखों लड़कियों जैसी ही एक लड़की थी। वहाँ मुझ में कुछ भी खास बात नहीं थी। लेकिन यहाँ अब कभी-कभी बाहर वाले की आवाज होना अच्छा लगता है। कभी-कभी बहुत बुरा भी लगता ही है।

लेकिन अक्सर तो यह काफी बढ़िया ही होता है।

आप ऐसे किसी युवा को क्या राय देंगी जो अंतरराष्ट्रीय छात्र बनने की तैयारी कर रहा है?

मुझे लगता है कि मेरे काफी हद तक नादान बने रहने ने मेरी मदद की है। प्लेन पर सवार होते हुए मैं नादानी से सोच रही थी कि मैं जल्द ही तालमेल बैठा लूँगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मैं नादान थी और समझती थी कि मुझे तो सब पता है, लेकिन मुझे सब पता नहीं था। लेकिन फिर भी मुझे लगता है कि नादान स्वप्नजीवी की सहज उत्सुकता मेरे लिए अच्छी ही रही। एक दूसरे सांस्कृतिक परिवेश में पहुंच जाना बहुत ही उतार-चढ़ावों से भरा होता है, आप चीजें सीखते और फिर भूलते रहेंगे, चक्रारते रहेंगे। जैसे ही आपको लगने लगेगा कि आप ठीक से जम गए हैं, सब ठीकठाक हैं, तभी कुछ न कुछ ऐसा होगा कि आप परेशान हो जाएंगे। जब आपको लगने लगेगा कि आप सदा बाहरी व्यक्ति ही रहने वाले हैं और आप इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाएंगे तभी कोई दोस्ती का हाथ बढ़ेगा और सब ठीक हो जाएगा।



चार्लीन पोर्टर [America.gov](#) में इंजनीर यूएसए की प्रबंध निदेशक हैं।

मेरी बेटी का व्यवितात्व निर्खास है

विक्रम मूर्ति

गायत्री मूर्ति के पिता बता रहे हैं अंतरराष्ट्रीय शिक्षा की कहानी का दूसरा पहलू

जब गायत्री ने हमें बताया कि उसने अमेरिका में स्नातकोत्तर अध्ययन करने का मन बना लिया है तो हमने इस विचार का स्वागत किया। हमने विरोध तो नहीं किया लेकिन हम दो बातों को लेकर चिन्तित थे: हम अमेरिका में उसकी शिक्षा के खर्च पूरे करने के लिए पैसा कैसे जुटाएंगे, और गायत्री एक अपरिचित वातावरण में अकेली कैसे रहेंगी?

हमारा सौभाग्य था कि हमें मुम्बई में एक ऐसे कन्सलेटेंट मिले जिन्होंने हमारी शंकाओं को दूर किया और कुछ समस्याओं के बारे में हमें परामर्श दिया। उन से मिलने के बाद गायत्री, मेरी पत्नी, और मैं कुछ आराम और आत्मविश्वास के साथ बाकी प्रक्रिया पूरी कर पाए। बाद में गायत्री को अमेरिकन यूनिवर्सिटी में पढ़ने के लिए एक सम्मानित छात्रवृत्ति भी मिल गई। इससे हमें बहुत गर्व का अनुभव हुआ और साथ ही पैसे को लेकर चिन्ता भी कम हुई।

जब जुदा होने का बक्त आया तो गायत्री से ज्यादा परेशान मैं और मेरी पत्नी थे। 22 बरस में वह घर से दूर कभी नहीं रही थी। हमें सबसे ज्यादा चिन्ता वाशिंगटन में शुरू के कुछ हफ्तों को लेकर थी। उसे राह दिखाने या सलाह देने के लिए हमारे कोई नजदीकी परिचित वहाँ नहीं थे।

गायत्री ने ठान लिया था कि वह अकेली ही जाएगी। आखिरकार उसने हमारे एक निकट मित्र की बहन का पता लगा लिया जो वाशिंगटन में ही रहती है। यह महिला गायत्री को लेने हवाई अड्डे तो पहुंची ही, उन्होंने जब तक उसे घर नहीं मिला तब तक अपने यहाँ भी टिकाया।

ईमानदारी से कहूँ तो एक-दूसरे से जुदा होने में हमें भी तकलीफ हुई और गायत्री को भी। शाम को काम से लौटने पर अपने इकलौते बच्चे की गैरमौजूदगी हमें भारी लगती थी तो वह भी घर के आराम और भावनात्मक ऊष्मा और साथ ही अपने शहर में रहने के आत्मविश्वास की कमी को महसूस करती थी।

हमें उसकी याद आती रही लेकिन हमने पाया है कि अमेरिका में दो बरस रहते गायत्री में बहुत अच्छा बदलाव आया है। वह बहुत आत्मविश्वास से भरी है और अपनी राय खुलकर बताती है। वह अपने निजी और व्यावसायिक जीवन के बारे में आराम से खुद ही, हमारी राय लिए बिना, फैसले ले पाती है। बचपन में वह काफी खामोशी और संकोची थी लेकिन अब वह संवाद का केन्द्र होती है। मुम्बई में जेवियर्स कॉलेज में पढ़ते हुए ही उसके व्यक्तित्व में बदलाव आने लगा था लेकिन अमेरिका के वातावरण में उसमें निखार आया है।

बहुत से मातापिता मुझ से पूछना चाहेंगे कि क्या उन्हें भी हमारी तरह अपने बच्चे को परदेस भेजना चाहिए, तो सच बात यह है कि मेरे पास कोई सीधा जवाब नहीं है। मैं मानता हूँ कि परदेस के माहौल में घुलने-मिलने की क्षमता बच्चे के पालनपोषण पर निर्भर है। ग्रामीण या कस्बाई पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए तालमेल बैठा पाना कठिन होगा जबकि शहर के बच्चों के लिए यह इतना कठिन साबित नहीं होगा क्योंकि शहरी जीवन चुनौतियों से भरा है, वहाँ के बच्चे तालमेल बैठाना आसानी से सीख लेते हैं। बच्चों के तालमेल बैठाने की क्षमता पर माता-पिता और उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का भी काफी असर पड़ता है। अंग्रेजी की जानकारी का भी असर पड़ता है। ये बातें अमेरिका जा रहे ज्यादातर छात्रों पर लागू होती हैं।

और इसके बाद भी, भारतीय माता-पिताओं को मेरी सलाह यही है कि विदेश में शिक्षा पाना एक ऐसा अनुभव है जो आपके बच्चे को आत्मविश्वास से भरे एक ऐसे स्वतंत्र व्यक्ति में बदल देगा जो अपने निजी और व्यावसायिक फैसले ठीक से ले लेगा।

विक्रम मूर्ति मुम्बई में इलेक्ट्रिकल इंजीनियर हैं।

